

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 6 अध्याय 9: वृत्रासुर का प्राकट्य

14 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



एक शोकाकुल पिता के यज्ञ से उत्पन्न, विशालकाय राक्षस वृत्र प्रलय की अग्नि के समान उठता है और देवताओं के अस्त्रों को निगल जाता है — जब तक कि निरुपाय देवगण अन्तर्मुख होकर भगवान् नारायण की शरण नहीं लेते, जो वह एकमात्र मार्ग प्रकट करते हैं जिससे यह आतंक परास्त हो सकता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

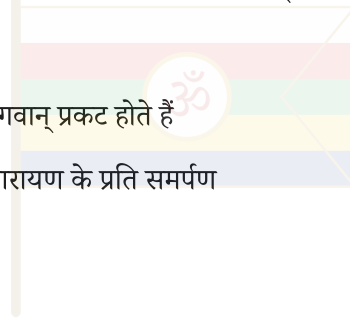
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। षष्ठ स्कन्ध का नवाँ अध्याय इन्द्र की कथा को अन्धकारमय भूमि में ले जाता है। जिस पुरोहित ने स्वर्ग का वैभव पुनः लौटाया था, वही विश्वरूप गुप्त रूप से असुरों का पक्ष लेते हुए पकड़े जाते हैं, और भयभीत इन्द्र उनका शिरच्छेद कर देते हैं — जिससे उन्हें ब्रह्महत्या का गुरुतर पाप लगता है। प्रतिशोध में, शोकाकुल त्वष्टा एक यज्ञ करते हैं जिससे वृत्र प्रकट होता है, पर्वत के समान विशाल और मृत्यु के समान भयंकर एक राक्षस, जो देवताओं के अस्त्रों को ही निगल जाता है। उसके समक्ष असमर्थ होकर, देवगण अन्ततः अपनी शक्ति से मुड़कर भगवान् नारायण की शरण लेते हैं, और गहन समर्पण की एक प्रार्थना अर्पित करते हैं। भगवान् प्रकट होते हैं, उनकी स्तुति स्वीकार करते हैं, और वह एकमात्र उपाय प्रकट करते हैं जिससे वृत्र का वध हो सकता है: ऋषि दधीचि की अस्थियों का दान, जिनसे वज्र गढ़ा जाएगा।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 6 (षष्ठ स्कन्ध)
- अध्याय: 9 (नवम अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: राक्षस वृत्रासुर का प्राकट्य
- मुख्य वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी, राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए; कथा के भीतर देवगण तथा भगवान्
- मुख्य श्रोता: राजा परीक्षित; बाह्य कथा में नैमिषारण्य के ऋषिगण
- मुख्य स्थल: स्वर्ग तथा त्वष्टा का यज्ञ-स्थल; और देवताओं के हृदय, जहाँ भगवान् प्रकट होते हैं
- केन्द्रीय विषय: विश्वरूप का वध, वृत्र का जन्म, और देवताओं का भगवान् नारायण के प्रति समर्पण
- मुख्य श्लोक-परिधि: स्कन्ध 6, अध्याय 9, श्लोक 1-55
- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



विश्वरूप का गुप्त अपराध

श्रीशुकदेव बताते हैं कि विश्वरूप के तीन सिर थे — एक जिससे वे सोमरस पीते, एक जिससे मदिरा पीते, और एक जिससे अन्न खाते थे। यद्यपि वे प्रकट रूप में देवताओं को आहुति अर्पित करते थे, जो पिता की ओर से उनके सम्बन्धी थे, तथापि अपनी माता के उनके प्रति स्नेह के कारण वे गुप्त रूप से असुरों को भी एक भाग अर्पित करते थे (श्लोक 1-3)।

श्रीशुक उवाच

तस्यासन् विश्वरूपस्य शिरांसि त्रीणि भारत ।

सोमपीथं सुरापीथमन्नादमिति शुश्रुम ॥ १ ॥

śrī-śuka uvāca tasyāsan viśvarūpasya śirāṁsi trīṇi bhārata soma-pītham surā-pītham annādam iti śuśrūma

अर्थ: श्रीशुकदेव ने कहा: हे भरतवंशी, ऐसा हमने सुना है — अपने तीन सिरों में से पहले से विश्वरूप सोमरस लेते, दूसरे से मदिरा पीते, और तीसरे से अपना भोजन करते थे। (स्कन्ध 6, अध्याय 9, श्लोक 1)

विश्वरूप का वध

इस विश्वासघात को जानकर — जिससे देवगण अपने न्यायसंगत भाग से वंचित हो रहे थे — और यह भय होने पर कि विश्वरूप किसी दिन उनका विनाश न कर दें, क्रुद्ध इन्द्र ने तत्काल उनके तीनों सिर काट डाले। सोम पीने वाला सिर तीतर (चकोर) बन गया, मदिरा पीने वाला सिर गौरैया, और अन्न खाने वाला सिर तीतर (कपिञ्जल) बन गया (श्लोक 4-5)। यद्यपि इन्द्र इस पाप को टालने में समर्थ थे, तथापि उन्होंने विनम्रतापूर्वक ब्रह्महत्या के पाप को स्वीकार किया, और एक वर्ष तक उसे वहन करने के पश्चात् उसे चार भागों में बाँट दिया, उन्हें पृथ्वी, जल, वृक्षों और स्त्रियों को सौंपते हुए — प्रत्येक ने एक वरदान सहित अपना भाग स्वीकार किया, जिससे उस पाप के दृश्य चिह्न आज भी संसार में विद्यमान हैं (श्लोक 6-10)।



विश्वरूप को गुप्त रूप से असुरों का पक्ष लेते हुए जानकर, भयभीत इन्द्र ऋषि के तीनों सिर काट देते हैं और ब्रह्महत्या का गुरुतर पाप वहन करते हैं (श्लोक 4-6)।

वृत्र का जन्म

त्वष्टा, जिनके पुत्र का वध हुआ था, इन्द्र का घातक शत्रु प्राप्त करने के लिए पवित्र अग्नि में आहुतियाँ देने लगे। शोक में उनसे अपने ही मन्त्र का उच्चारण-स्वर चूक गया, जिससे जिसे वे “इन्द्र का संहारक” कहना चाहते थे, वह “इन्द्र का शत्रु मात्र” बनकर उत्पन्न हुआ — एक छोटी-सी भूल जो मौन रूप से यह संकेत दे देती है कि अन्ततः किसका हाथ ऊपर रहेगा (श्लोक 11)। अग्नि से एक भयंकर आकृति का राक्षस उठा, मानो प्रलय-काल में स्वयं मृत्यु प्रकट हुई हो। प्रतिदिन बढ़ते हुए, प्रत्येक ओर बाण की उड़ान के विस्तार तक, जले हुए पर्वत के समान श्याम, तपे ताँबे के समान लाल दाढ़ी और केश वाला, और मध्याह्न के सूर्य के समान प्रचण्ड नेत्रों वाला, वह अपने प्रज्वलित त्रिशूल के साथ नाचा, गरजा, और पृथ्वी को कँपा दिया, उसका गुहा-सम मुख आकाश को निगलता और तारों को चाटता प्रतीत होता था (श्लोक 11-17)। क्योंकि ये लोक त्वष्टा से उत्पन्न उस विशाल अन्धकार से आवृत हो गए थे, उसका यथार्थ नाम वृत्र, “आवरण करने वाला”, पड़ा — परम पापी और परम भयंकर (श्लोक 18)।

येनावृता इमे लोकास्तपसा त्वाष्ट्रमूर्तिना ।

स वै वृत्र इति प्रोक्तः पापः परमदारुणः ॥ १८ ॥

yenāvṛtā ime lokās tapasā tvāṣṭra-mūrtinā sa vai vṛtra iti proktaḥ pāpaḥ parama-dāruṇaḥ

अर्थ: क्योंकि ये समस्त लोक त्वष्टा की सन्तान के तपोजनित रूप से आवृत हो गए थे, वह यथार्थ रूप से वृत्र, आवरण करने वाला, कहलाया — परम पापी और अत्यन्त भयंकर। (स्कन्ध 6, अध्याय 9, श्लोक 18)



शोकाकुल त्वष्टा की यज्ञाग्नि से विशालकाय राक्षस वृत्र उठता है, जले हुए पर्वत के समान विशाल और प्रलय की अग्नि के समान भयंकर (श्लोक 12-17)।

देवताओं की पराजय

देवताओं के सेनापति अपने दिव्य अस्त्रों और शस्त्रों के समूहों सहित वृत्र पर टूट पड़े — किन्तु उसने उन सबको निगल लिया। अपना तेज मलिन होते देख, विस्मित और खिन्न होकर, देवगण स्वयं को सँभालकर अन्तर्मुख हुए, हृदय में निवास करने वाले भगवान् नारायण की शरण में जाते हुए (श्लोक 19-20)। गहन समर्पण की एक प्रार्थना में उन्होंने स्वीकार किया कि स्वयं मृत्यु भी परमेश्वर से भयभीत रहती है, कि जो अन्यत्र शरण खोजता है वह उसके समान है जो कुत्ते की पूँछ पकड़कर समुद्र पार करना चाहता है, और कि जिन भगवान् ने मत्स्य रूप में सत्यव्रत की और सृष्टि के आरम्भ में ब्रह्मा की रक्षा की, वे निश्चय ही अपने भक्तों की वृत्र के आतंक से रक्षा करेंगे (श्लोक 21-27)।



अपने समस्त दिव्य अस्त्रों और शस्त्रों सहित वृत्र पर टूट पड़ते हुए, देवताओं के सेनापति व्याकुलता से देखते हैं जब राक्षस उन्हें समूचा निगल जाता है (श्लोक 19-20)।

भगवान् का प्राकट्य

जब देवगण प्रार्थना कर रहे थे, भगवान् प्रकट हुए — पहले उनके हृदयों के भीतर, और फिर उनके समक्ष, शंख, चक्र और गदा धारण किए, अपने सोलह पार्षदों से सेवित, अपने नेत्र पूर्ण-विकसित शरत्कालीन कमलों के समान। आनन्द से अभिभूत होकर, देवगण भूमि पर साष्टांग गिर पड़े और फिर, धीरे-धीरे उठकर, अपनी स्तुतियाँ अर्पित कीं (श्लोक 28-30)।

श्रीशुक उवाच

इति तेषां महाराज सुराणामुपतिष्ठताम् ।

प्रतीच्यां दिश्यभूदाविः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ २८ ॥

śrī-śuka uvāca iti teṣāṁ mahārāja surāṇām upatiṣṭhatām pratīcyāṁ diśy abhūd āviḥ śaṅkha-cakra-gadā-dharaḥ

अर्थ: श्रीशुकदेव ने कहा: हे महाराज, जब देवगण इस प्रकार विनती कर रहे थे, तभी भगवान् का साक्षात्कार हुआ — प्रथम उनके अन्तःकरण में, और तत्पश्चात् पश्चिम दिशा में स्वयं प्रकट होकर उनके सम्मुख — शंख, चक्र और गदा हाथों में लिए हुए। (स्कन्ध 6, अध्याय 9, श्लोक 28)



जैसे ही देवगण समर्पण में प्रार्थना करते हैं, भगवान् नारायण शंख, चक्र और गदा धारण किए प्रकट होते हैं, और देवगण आनन्द से उनके समक्ष साष्टांग गिर पड़ते हैं (श्लोक 28-30)।

उनकी प्रार्थना स्तुति की एक सरिता के समान उमड़ी। उन्होंने भगवान् को नारायण और वासुदेव, आदितम पुरुष कहकर पुकारा, जिनकी महिमा यज्ञ से प्रकाशित होती है और जिनका चक्र धर्म के शत्रुओं का संहार करता है — ब्रह्माण्ड के एकमात्र आश्रय और लक्ष्मी के पति, जिन्हें केवल वे परम संन्यासी पहचान पाते हैं जो गहनतम समाधि में स्थित होकर अज्ञान के चिरकालिक ताले को तोड़ डालते हैं और तब अपने ही अन्तस् में उस चिर-प्रतीक्षित सुख का साक्षात्कार करते हैं (श्लोक 31-33)।

ॐ नमस्तेऽस्तु भगवन्नारायण वासुदेवादिपुरुष महापुरुष महानुभाव परममङ्गल परमकल्याण परमकारुणिक केवल जगदाधार लोकैकनाथ सर्वेश्वर लक्ष्मीनाथ परमहंसपरिव्राजकैः परमेणात्मयोगसमाधिना परिभाषितपरिस्फुटपारमहंस्यधर्मेणोद्घाटिततमःकपाट द्वारे चित्तेऽपावृत आत्मलोके स्वयमुपलब्धनिजसुखानुभवो भवान् ॥ ३३ ॥

om namas te 'stu bhagavan nārāyaṇa vāsudevādi-puruṣa mahā-puruṣa mahānubhāva parama-maṅgala parama-kalyāṇa parama-kāruṇika kevala jagad-ādhāra lokaika-nātha sarveśvara lakṣmī-nātha paramahansa-parivrājakaiḥ parameṇātma-yoga-samādhinā paribhāvita-parisphuṭa-pāramahansa-dharmeṇodghāṭita-tamaḥ-kapāṭa-dvāre citte 'pāvṛta ātma-loke svayam upalabdha-nija-sukhānubhavo bhavān.

अर्थ: हे नारायण भगवान्, हे वासुदेव, महापुरुष, महाप्रभाव, परम मङ्गल, परम कल्याण, परम करुणामय, ब्रह्माण्ड के एकमात्र आश्रय, समस्त लोकों के स्वामी, लक्ष्मीपति — आपको नमस्कार हो; आप केवल उन महान् परमहंस संन्यासियों द्वारा ही जाने जाते हैं जो पूर्ण योग-समाधि द्वारा, अज्ञान से अवरुद्ध हृदय के द्वार को खोलकर, अपने ही भीतर उस आनन्द का अनुभव पाते हैं जिसे वे सदा खोजते रहे। (स्कन्ध 6, अध्याय 9, श्लोक 33)

फिर भी इतनी दीर्घ स्तुति के पश्चात् उन्होंने स्वीकार किया कि यह स्तुति लगभग अनावश्यक ही थी: एक चिंगारी उसी अग्नि को क्या सूचना दे सकती है जिससे वह उठी है, उन्होंने पूछा, जब भगवान् स्वयं प्रत्येक हृदय में निवास करते हुए पहले से ही सब कुछ जानते हैं (श्लोक 42)? उन्होंने कहा कि वे वस्तुतः केवल उनके चरण-कमलों की शरण चाहते थे, वह एकमात्र छाया जो इस संसार के प्रत्येक दुःख को शान्त कर देती है, इससे पूर्व कि वे अन्ततः उस राक्षस के संहार की प्रार्थना करें जिसने उनकी सम्पूर्ण शक्ति निगल ली थी (श्लोक 43-44)। समापन में उन्होंने कहा कि वे ही ब्रह्माण्ड के आश्रय हैं, समस्त लोकों के आधार, वह प्रिय धाम जिसमें प्रत्येक भटकती आत्मा अपनी यात्रा के अन्त में लौटती है (श्लोक 45)।

भगवान् की आज्ञा

उनकी प्रार्थना से प्रसन्न होकर, भगवान् ने उत्तर दिया कि वे उस पवित्र स्तुति से प्रसन्न हैं जिससे उन्होंने उनकी स्तुति की — एक ऐसी स्तुति जो सच्चे ज्ञान से उत्पन्न होकर, जो भी उसे अर्पित करता है उसे शुद्ध और जागृत कर देती है (श्लोक 46-47)। जब वे प्रसन्न होते हैं, उन्होंने कहा, तब क्या प्राप्त नहीं हो सकता? फिर भी उनका सच्चा भक्त, जिसका मन पूर्णतः उन्हीं पर स्थिर है, सेवा के अवसर के अतिरिक्त कुछ नहीं माँगता (श्लोक 48)।

फिर भगवान् के अपने वचनों में एक अप्रत्याशित मोड़ आया। जो भौतिक सम्पत्ति को जीवन का परम लक्ष्य मानते हैं, उन्होंने कहा, वे मात्र कृपण हैं जो आत्मा की वास्तविक आवश्यकता को नहीं जानते — और जो भी ऐसी माँग को पूरा करता है, वह उस कृपण की मूर्खता को ही बढ़ावा देता है (श्लोक 49)। सच्चे ज्ञान में स्थित भक्त, उन्होंने आगे कहा, किसी संघर्षरत आत्मा को उसी बन्धनकारी कर्म की अधिकता की ओर कभी प्रेरित नहीं करता, जैसे एक बुद्धिमान चिकित्सक रोगी को वह भोजन कभी नहीं देता जो चाहे रोगी माँगे भी, उसकी बीमारी को बढ़ा दे (श्लोक 50)। यद्यपि भगवान् प्रसन्न थे और उनकी विनती स्वीकार करने को तत्पर थे, तथापि वे यहाँ भी देवगण को यह स्मरण कराए बिना न रह सके कि पुनः प्राप्त अस्त्र उनकी सबसे बड़ी भेंट नहीं है।

तब उन्होंने उपाय प्रकट किया: इन्द्र दधीचि के पास जाएँ, ऋषियों में श्रेष्ठ, जिनका शरीर मन्त्र, व्रत और तप से बलवान् हुआ है, और उनसे उनके अंग माँगें (श्लोक 51)।

मघवन् यात भद्रं वो दध्यञ्चमृषिसत्तमम् ।

विद्याव्रततपःसारं गात्रं याचत मा चिरम् ॥ ५१ ॥

maghavan yāta bhadraṁ vo dadhyañcam ṛṣi-sattamam vidyā-vrata-tapaḥ-sāraṁ gātraṁ yācata mā ciram

अर्थ: हे इन्द्र, आपका कल्याण हो; ऋषियों में श्रेष्ठ, ज्ञान, व्रत और तप के मूर्तिमान् सार दधीचि के पास जाओ, और विलम्ब किए बिना उनसे उनका शरीर माँगो। (स्कन्ध 6, अध्याय 9, श्लोक 51)

भगवान् ने उस ऋषि की पवित्र परम्परा बताई: दधीचि, जिन्होंने ब्रह्म का साक्षात्कार किया था, ने अश्विनीकुमारों को अपने अश्व-मस्तक द्वारा ब्रह्मविद्या प्रदान की थी, और त्वष्टा को वही नारायण-कवच सिखाया था जो विश्वरूप को और फिर इन्द्र को प्राप्त हुआ। दान में अर्पित दधीचि के अंगों की अस्थियों से, विश्वकर्मा एक वज्र गढ़ेंगे, और, भगवान् की अपनी शक्ति से बलवान् होकर, इन्द्र वृत्र का सिर काट डालेंगे और अपना समस्त लुप्त वैभव पुनः प्राप्त करेंगे — क्योंकि शत्रु उन्हें कभी नष्ट नहीं कर सकते जो भगवान् की शरण में हैं (श्लोक 52-55)।

इस अध्याय को प्रमुख शिक्षाएँ

1. विश्वास का छोटा-सा भंग भी बड़े परिणाम लाता है। विश्वरूप की गुप्त पक्षपात पाप, शोक और आतंक की एक शृंखला को गति देती है, यह दर्शाते हुए कि विभाजित निष्ठाएँ किस प्रकार एक पवित्र पद को भी मौन रूप से भ्रष्ट कर सकती हैं (श्लोक 3-4)।
2. पाप को स्वीकारना चाहिए, टालना नहीं। इन्द्र, यद्यपि प्रतिक्रिया को टालने में समर्थ थे, विनम्रतापूर्वक अपने कर्म का पाप स्वीकार करते हैं और उसका भार वहन करते हैं — इनकार के स्थान पर उत्तरदायित्व का एक आदर्श (श्लोक 6-10)।
3. क्रोध और प्रतिशोध नए दुःख को जन्म देते हैं। त्वष्टा का शोक-प्रेरित यज्ञ वृत्र को उत्पन्न करता है; हिंसा का उत्तर हिंसा से देना केवल अन्धकार को बढ़ाता है (श्लोक 11-18)।
4. जब हमारी अपनी शक्ति विफल हो जाती है, तब समर्पण शेष रहता है। देवगण, अपने अस्त्रों से विहीन होकर, अन्तर्मुख होकर भगवान् नारायण की ओर मुड़ते हैं — यह सिखाते हुए कि आत्मनिर्भरता का अन्त सच्ची शरण का आरम्भ हो सकता है (श्लोक 19-27)।
5. भगवान् की सहायता प्रायः एक महान् त्याग माँगती है। वृत्र का उपाय कोई जादुई भेंट नहीं, अपितु एक सन्त का स्वेच्छापूर्ण आत्मार्पण है, जो इस सत्य की ओर संकेत करता है कि उद्धार निःस्वार्थ समर्पण से प्राप्त होता है (श्लोक 51-54)।
6. सच्ची भक्ति बदले में कुछ नहीं चाहती। देवताओं की विनती स्वीकार करते हुए भी, भगवान् स्पष्ट कर देते हैं कि जिस भक्त का हृदय उन्हीं पर स्थिर है, वह सेवा के अवसर के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता, और किसी छोटी इच्छा की पूर्ति, चाहे वह कितनी भी सच्चे मन से माँगी गई हो, स्वयं में एक प्रकार की मूर्खता है (श्लोक 48-50)।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

यह अध्याय इस विषय में सच्चा है कि विपत्ति किस प्रकार बढ़ती है। इसका आरम्भ किसी छोटी बात से होता है — एक पुरोहित का उस भाग को गुप्त रूप से असुरों की ओर मोड़ देना जो वास्तव में कभी उनका अधिकार था ही नहीं — और इसका अन्त आकाश को निगलने योग्य विशाल एक राक्षस पर होता है। इनके बीच खड़े हैं एक वध, एक शोकाकुल पिता, एक प्रतिशोधी यज्ञ, और अपने अस्त्रों पर इतने गर्वित देवगण कि वे प्रार्थना करने से पूर्व आक्रमण कर बैठते हैं। भागवत हमें यह सम्पूर्ण दुःखद क्रम देखने देता है, और केवल तभी जब प्रत्येक अस्त्र निगल लिया जाता है, देवगण वह एक कार्य करते हैं जो सहायक है: वे अन्तर्मुख होकर समर्पण करते हैं। यह एक परिचित आकृति है। कितनी बार हम अपनी समस्त युक्तियाँ — अपने बचाव, अपने प्रत्याक्रमण, अपनी चतुर योजनाएँ — समाप्त कर लेते हैं, इससे पूर्व कि हम अन्ततः प्रार्थना करना स्मरण करें। इस कथा की करुणा यह है कि भगवान् उन देवताओं को अस्वीकार नहीं करते जो देर से, और केवल हर अन्य उपाय विफल होने पर ही, उनकी ओर आते हैं; वे उसी क्षण प्रकट होते हैं जब वे सचमुच उनकी ओर मुड़ते हैं, पहले उनके हृदयों में और फिर उनके नेत्रों के समक्ष — और उसी श्वास में यह भी मृदुतापूर्वक स्मरण कराते हैं कि भक्त का सच्चा धन पुनः प्राप्त अस्त्र नहीं, अपितु स्वयं उनकी सेवा करने की इच्छा है। और उनका उपाय शान्त रूप से सुन्दर है। वे केवल स्वयं वृत्र का संहार नहीं करते; वे एक सन्त के त्याग का आह्वान करते हैं, जिससे विजय भी प्रेम और आत्मदान का एक कार्य बन जाती है। यह अध्याय हमें सिखाता है कि हमारी घोरतम विपत्तियाँ अधिक बल से नहीं, अपितु भगवान् के प्रति समर्पण और स्वयं को अर्पित करने की तत्परता से जीती जाती हैं।

एक दैनिक भाक्ते-अभ्यास

आज, अपनी अपनी शक्ति समाप्त होने से पूर्व भगवान् की ओर मुड़ने का अभ्यास करें। जब कोई कठिनाई उठे — कोई चिन्ता, कोई द्वन्द्व, कोई भय जो अत्यधिक विशाल प्रतीत हो — तो अपने सामान्य बचावों की ओर हाथ बढ़ाने से पूर्व रुकें, और पहले उस परिस्थिति को भगवान् को अर्पित करें, उनके नाम को अपने अधरों पर रखते हुए उसे शान्त भाव से उनके हाथों में सौंप दें। समर्पण को अपनी अन्तिम नहीं, अपितु प्रथम प्रतिक्रिया बनने दें। और उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए एक क्षण लें जिन्होंने आपके भले के लिए त्याग किया है — माता-पिता, गुरुजन, अदृश्य उपकारी — और उस ऋषि के भाव में, जिन्होंने अपनी अस्थियाँ तक अर्पित कर दीं ताकि दूसरों की रक्षा हो सके, आज किसी अन्य के लिए स्वयं को अर्पित करने का एक छोटा-सा उपाय विचारें।

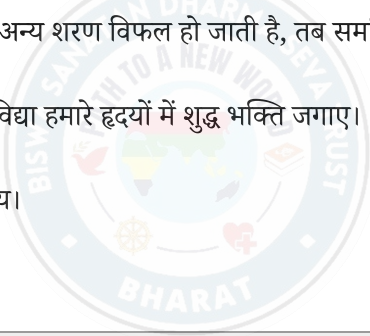
उपसंहार

षष्ठ स्कन्ध का नवाँ अध्याय दर्शाता है कि किस प्रकार एक छिपा हुआ दोष अभिभूत करने वाले अन्धकार में बढ़ सकता है — विश्वरूप की गुप्त आहुति से इन्द्र के गुरुतर पाप तक, त्वष्टा के प्रतिशोधी यज्ञ से वृत्र के विशाल आतंक तक। फिर भी इसका सच्चा विषय है वह मोड़: वह क्षण जब निरुपाय देवगण अपने अस्त्रों पर निर्भरता त्यागकर भगवान् नारायण की शरण लेते हैं, जो तत्काल उनकी प्रार्थना स्वीकार करने प्रकट होते हैं। उनका उपाय — ऋषि दधीचि का आत्मार्पण, जिनकी अस्थियाँ वज्र बनेंगी — यह प्रकट करता है कि उद्धार बल से नहीं, अपितु त्याग और कृपा से आता है। जैसे-जैसे यह स्कन्ध अगले अध्याय में इन्द्र और वृत्र के महान् युद्ध की ओर बढ़ता है, हम इस अध्याय का स्थिर पाठ साथ ले चलते हैं: कि जब प्रत्येक अन्य शरण विफल हो जाती है, तब समर्पित हृदय अपनी शरण भगवान् में पाता है।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



संदर्भ तथा साभार

- मुख्य संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (अंग्रेज़ी, सम्पूर्ण), षष्ठ स्कन्ध, नवम प्रवचन।
- शृंखला: Srimad Bhagavatam Wisdom · Biswa Sanatan Dharma Seva Trust।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन तथा अनुशंसा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी तथा लिप्यन्तरण में और उनके अर्थ सारांश के रूप में दिए गए हैं। यह किसी एक प्रकाशक के निरन्तर अनुवाद या टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक द्वारा संबद्धता या समर्थन का कोई अभिप्राय नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-6-chapter-9-appearance-of-vritrasura-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

